उत्कृष्ट समाज के निर्माण में शिक्षक की प्रासंगिकता

डॉ0 शिवम् श्रीवास्तव*

किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में वहां के शिक्षकों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। शिक्षक किसी भी समाज का निर्माता माना जाता है। आज भारतीय समाज भविष्य के प्रति समृद्धि एवं कल्याण का स्वप्न सजोंये 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है इस नये युग मे खड़े समाज की युवा पीढ़ी से अनेक आशाएं है क्योंकि हमारी युवा पीढ़ी ही भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति की द्योतक है यही पीढ़ी नवीन जनसंस्कृति के निर्माण तथा भारतीय संस्कृति के पूर्ण स्थापित सत्यों एवं जनतांत्रिक मूल्यों के संरक्षण एवं संश्लेषण का दायित्व लेने के लिये भी तैयार है परन्तु इस सुयोग्य युवा पीढ़ी का निर्माण तभी संभव है जब योग्य शिक्षक मिलेंगे। यद्यपि शिक्षकों को अपने शिक्षण कार्य को करने के लिए अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शिक्षकों का महत्व बताते हुए **श्री एच0जी0 वेल्स**[1] का कथन है कि ''अध्यापक इतिहास का वास्तविक निर्माता है'' **जान एडमस**[2] ने भी कहा है कि ''शिक्षक मनुष्य का निर्माता है'' इन कथनों से स्पष्ट है कि विश्व के सभी मनीषी शिक्षक के समाज में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। अपने देश में तो गुरू का स्थान ईश्वर से भी महान बताया गया है वास्तव में शिक्षक के हाथ में वह शक्ति है जो बालक को नया जन्म देती है इसलिए प्रत्येक शैक्षिक योजना में शिक्षक को महत्वपूर्ण माना जाता है। शिक्षाविद **नेल्सन एल0 बासिंग**[3] का कहना है कि ''किसी भी शिक्षा योजना में मैं शिक्षक को निर्विवाद केन्द्रीय स्थान देता हूँ शैक्षिक प्रक्रिया के प्रमुख संचालक होने के नाते अवश्य ही उसका स्थान प्रमुख है।''

शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करती है, उसके देवत्व का दर्शन कराती है, मानवीय मूल्यों की अनुभूति का उसे अवसर प्रदान करती है और स्वानुभूति का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा द्वारा ऐसे वातावरण की सर्जना अभीष्ट है जिससे व्यक्ति अपनी नैसर्गिक क्षमताओं को पूर्णतया विकास करने की ओर अग्रसर हो सके।

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है और यह कार्य मनुष्य के जन्म से प्रारम्भ हो जाता है। बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद ही उसके माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य उसे सुनना और बोलना सिखाने लगते हैं। जब बच्चा कुछ बड़ा होता है तो उसे उठने–बैठने, चलने–फिरने, खाने–पीने तथा सामाजिक आचरण की विधियाँ सिखाई जाने लगती हैं। जब वह तीन–चार वर्ष का होता है तो उसे पढ़ना–लिखना सिखाने लगते हैं। इसी आयु पर उसे विद्यालय भेजना प्रारम्भ किया जाता है। विद्यालय में इसकी शिक्षा बड़े सुनियोजित ढंग से चलती है। विद्यालय के साथ–साथ उसे परिवार एवं समुदाय में भी कुछ न कुछ सिखाया जाता रहता है और सीखने–सिखाने का यह काम विद्यालय छोड़ने के बाद भी चलता रहता है और जीवन भर चलता है और विस्तृत रूप से यह प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। अपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने–सिखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है।

शिक्षा प्रगतिशील राष्ट्र की आधारशिला है। किसी भी राष्ट्र का निर्माण केवल भौतिक सम्पन्नता से नहीं हो सकता है। बड़े–बड़े बाँध, विद्युत कल कारखाने, आधुनिक वैज्ञानिक सुविधायें और उपलब्धियाँ जहाँ किसी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है, वहीं कहीं इससे भी अधिक आवश्यकता है उस मानव का निर्माण करना जो अपनी तुच्छ व दुर्बलताओं से आगे उठने की भावना से सम्पन्न हो और धन

* अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, किसान पी0जी0 कालेज, बहराइच

लोलुपता एवं स्वार्थपरता की भावना से मुक्त हो, जो समाज व राष्ट्र कल्याण तथा विश्वबन्धुत्व की भावना से युक्त हो, ऐसे मानव की रचना की एक मात्र आधारशिला है, और शिक्षा का उद्‌गम केन्द्र है–''शिक्षक''। शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है। यह सत्य है कि विद्यालय भवन, पाठ्यक्रम, पाठ्य–सहगामी क्रियायें, शैक्षिक उपकरण आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, पर जब तक उनमें कुशल–शिक्षकों द्वारा जीवन शक्ति नहीं प्रदान की जायेगी तब तक वे निरर्थक हैं।

शैक्षिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है–शिक्षक व शिक्षार्थी। दोनों ही क्रियायें–प्रक्रियायें एक दूसरे के उद्‌देश्यों, भावनाओं आदि के आदान–प्रदान का परिणाम है, 'शिक्षा'। शिक्षक अपने ज्ञान, बुद्धि, कल्पना, चिन्तन, तर्क आदि मानसिक, आत्मिक तथा व्यक्तित्व के प्रभाव से विद्यार्थियों में वांछनीय परिवर्तन करता है। यद्यपि शिक्षण प्रक्रिया में इसके अतिरिक्त अन्य तत्व क्रियाशील होते हैं व प्रभाव डालते हैं, लेकिन शिक्षक और छात्र सजीव तत्व होने के कारण अधिक प्रभावशाली हैं।

शिक्षा एक सोद्‌देश्य प्रक्रिया है। शिक्षा को व्यक्ति तथा समाज की आत्मा माना जाता है। शिक्षा से ही व्यक्ति समाज सभ्यता एवं संस्क़ति का विकास सम्भव है। भारतीय मनीषा के प्रत्येक युग में शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। महादेवी वर्मा ने अपने लेख राष्ट्र के मेरूदण्ड में अत्यंत सही बात कही है। कि शिक्षा संस्थानो में राष्ट्र बनता है। यह बात स्वीकार करते हैं कि सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कृत सम्पूर्ण विकास के लिए अच्छी शिक्षा परमावश्यक है। यह अत्यंत विचारणीय प्रश्न है कि भारतीय शिक्षा चाहे प्राथमिक माध्यमिक हो या उच्च या फिर अध्यापक शिक्षा उसे कैसे जीवनोपयोगी, जनोपयोगी तथा राष्ट्रोपयोगी बना सके तभी तो शिक्षा राष्ट्र निर्माण के महान उद्‌देश्य को पूरा कर सकेगी आज शिक्षा एक समस्यात्मक स्थिति मे चल रही है। यद्यपि लगता है कि आज हमने अनेक उपलब्धियाँ हासिल कर ली हैं पर यदि निष्कर्षो पर ध्यान दिया जाय तो हमें लज्जित ही होना पड़ता है।

हमारी प्राथमिक शिक्षा का स्तर कुछ जरूरत से अधिक निम्न स्तर की प्रतीत होती दिखाई दे रही है। जिसका प्रमुख रूप से शिक्षक के साथ–साथ समाज भी दोषी है। जब तक शिक्षक की अभिवृत्ति एवं कार्य सन्तुष्टि सकारात्मक नहीं होती तब तक शिक्षकों द्वारा छात्रों को किसी भी प्रकार की शिक्षा एवं विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक साधनों को जीवन शक्ति प्रदान नहीं की जा सकती है अर्थात ये साधन निरर्थक साबित होंगे। इन्हें समाप्त करना एक लोकतांत्रिक और प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करना तथा सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएं बड़ी करना जो प्रत्येक नर–नारी को न्याय और जीवन की सम्पूर्णता दिला सके। भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार में शिक्षण कार्य एक पवित्र व्यवसाय माना गया है मानव इतिहास की श्रेष्ठतम विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाया है।

अनेक धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों ने इस व्यवसाय को अंगीकार करके इसके गौरव में वृद्धि की है। बुद्ध, ईसा, गाँधी, सुकरात, मुहम्मद कन्फयूसियस आदि सच्चे अर्थ में मानव जाति के शिक्षक थे। उन्होंने अपने समय के सामान्य व्यक्तियों द्वारा जीवन में स्वीकारे जाने वाले मानदण्डों का समस्त रूपों में ईमानदारी से विश्लेषण किया और उनको उच्चतर जीवन के आदर्श और अनुभूति से परिचित कराया। इन विभूतियों की महानता इस बात से भी है कि वे अपने इन आदर्श को साकार बनाने में तन मन से जुटे रहे हैं। हमारे आज के शिक्षक भी इन महात्माओं के पद चिन्हों का अनुगमन करके अपने राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते है। इसलिए आज के शिक्षक को श्री बाल कृष्ण जोशी का यह परामर्श है शिक्षक को स्वयं केवल श्रमजीवी नहीं समझाना चाहिए जिसका कार्य दस बजे आरम्भ होकर चार बजे समाप्त हो जाता है। भारत में शिक्षक का स्थान सर्वोच्च रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्राचीन काल में शिक्षक अपने शिष्य का आध्यात्मिक गुरू होता था। आध्यात्मिक शिक्षा की चरम परिणति आत्म–साक्षात्कार या भगवत प्राप्ति के रूप में होती थी। इस चरम परिणति का माध्यम गुरू होता था। गुरू के द्वारा बताये गये हुए मार्ग पर चलकर ही शिष्य अपने उद्‌देश्यों पर पहुँचने में सफल होता था। इस कारण गुरू को गोविन्द से बड़ा माना गाया है। शिक्षा की दिशा आध्यात्मावाद से जब

भौतिकवाद की ओर परिवर्तित हुई तो शिक्षक का स्थान शिक्षा का प्रशासन तथा व्यवस्था से प्रभावित हुई। शिक्षा प्रशासनिक श्रृंखला की विद्यालय की वह कड़ी है। जहाँ राष्ट्र के लिए भावी नागरिकों को तैयार करने का काम होता है।

अनुसंधान करना मानव की प्रकृति है सृष्टि के आदि काल से ही वह अपने बुद्धि कौशल के बल पर प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की खोज करता चला आ रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुसंधान किये जाते रहे हैं। शिक्षा का मानव के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी रही है अतः शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत बड़े पैमान पर शोध कार्य होते रहे हैं।

नेहरू जी[4] ने कहा है ''शिक्षा का उद्देश्य बालक के चरित्र का विकास करना है'' अध्यापक अपने विचार क्रिया शब्द अपनी आत्मा बालक में डाल देता है अतः अध्यापक के विचार व्यवहार आदि को जानना भी आवश्यक है।

शिक्षक वर्ग ही एक ऐसा समुदाय है जो कि समाज को एक नयी चेतना, जागृति नयी क्रान्ति का संचार एवं स्फूर्ति प्रदान करता है। ''शिक्षक ही वह शक्ति है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आने वाली सन्तुतियों पर अपना प्रभाव डालती है। शिक्षक ही राष्ट्रीय एवं भौगोलिक सीमाओं को लांघकर विश्व व्यवस्था, मानव समाज, जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है।'' इतना ही नहीं अध्यापक उतना ही महत्वपूर्ण है जितना किसी चलती हुई गाड़ी के चालक जिसकी थोड़ी सी असावधानी से खतरा हो जाता है और भयंकर हानि भी हो जाती है।

शिक्षक के विषय में **जे0बी0 ब्राउन**[5] इस प्रकार लिखते हैंः—''समस्त बातों को ध्यान में रखकर मैं इस परिणाम तक पहुँचा हूँ कि अध्यापक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है पाठ्यक्रम, विद्यालय संगठन और पाठ्य सामग्री यद्यपि शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु वे तभी तक निष्प्राण रहते है, जब तक अध्यापक के सजीव व्यक्तित्व द्वारा उसमें प्रतिष्ठा नहीं कर दी जाती है।''

शिक्षक देश की संस्कृति का प्रतिनिधि होता है। यदि आप देश की जनता की संस्कृति स्तर को नापना चाहते हैं या जानना चाहते हैं कि समाज विशेष में किन मूल्यों का महत्व दिया जाता है तो उसका अच्छा तरीका यह है कि आप मालूम करें कि उस समाज में अध्यापकों का सामाजिक पद क्या है और उन्हें कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त है। चूँकि विद्यालय एक सामाजिक संस्था है और समाज द्वारा संचालित होती है अतः समाज को उचित दिशा निर्देशन शिक्षक से अच्छा भला कौन प्रदान कर सकता है? क्योंकि विश्व के कुछ शिक्षक कमाण्डर एवं शिक्षक प्रशिक्षक से अधिक उच्च कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व रखते हैं।

राष्ट्र अथवा समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन ''मानव'' है। कोई भी राष्ट्र उस समय ही उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। जबकि उसके अन्दर प्रत्येक मानव को यह सुविधा प्राप्त हो सके कि वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना विकास कर सके, जितना कि उसमें विकास करने की क्षमता है। वास्तव में मानव विकास के इतिहास में शिक्षण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि जब समाज के ढॉचे का निर्माण हुआ तो 'शिक्षण' समाज का एक महत्वपूर्ण कार्य बन गया। शिक्षण प्रदान करने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों को उत्तरदायित्व दे दिया गया, जिन्हें गुरू या शिक्षक या अध्यापक कहा गया साथ ही शिक्षण के लिए विशेष स्थान का चुनाव किया जाने लगा जिसे विद्याश्रम या विद्यालय कहा जाने लगा। संस्कृति के विकास में विद्यालय तथा शिक्षकों के स्तर बदले साथ ही शिक्षा के उद्देश्य एवं स्वरूप भी बदले।

हमारे देश में शिक्षक को आदरणीय और सम्मानीय स्थान प्राचीन काल से प्राप्त हो रहा है। पहले शिक्षा गुरूकुलों, मठों, मकतबों और मदरसों में आचार्यों, बौद्ध भिक्षुओं, मुल्लाओं और मौलवियों द्वारा प्रदान की जाती थी। किन्तु जैसे—जैसे समय चक्र घूमता रहा वैसे—वैसे समाज व्यवस्था तथा उससे जुड़ी संस्थाओं में परिवर्तन होता रहा। शिक्षा के बदलते स्वरूप तथा तत्कालीन परिस्थितियों के विश्लेषण की

सहायता से शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्ति, समिति तथा सरकारें अतीत की उत्तम तथा वर्तमान समय में उपादेय बातों को अपनाये रखने का प्रयास कर सकते हैं।

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास एवं संस्कृति के उत्थान के लिये अनिवार्य समझी जाती है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए विख्यात सिद्धान्तवादी **डॉ0एफ0डब्ल्यू थॉमस**[6] ने कहा कि ''ऐसा कोई भी देश नहीं जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय से प्रारम्भ हुआ हो या जिसने इतना स्थाई एवं शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो। वैदिक युग के साधारण कवियों से लेकर आधुनिक युग के बंगाली दार्शनिकों तक, शिक्षकों एवं विद्वानों का एक निर्विघ्न क्रम रहा है।''

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जहां सम्पूर्ण विश्व सूचना एवं तकनीकी के इस युग में लगभग पूरी तरह मशीनी होता जा रहा है फिर भी मशीनों के इस संसार में ऋषि एवं कृषि प्रधान इस देश की संस्कृति की ओर से यह आहवान कि शिक्षकों का सम्यक् सहयोग लिए बिना उत्कृष्ट समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। हम इस लेख के माध्यम से यह अपील करते हैं कि यदि वास्तविक विकास किये जाने के लिए सरकारें कृतसंकल्प हों तो अपने शिक्षकों का उचित चयन, प्रशिक्षण, सम्मान, स्वाभिमान का उचित ख्याल रखें। जिससे कि शिक्षक अन्य किसी कार्य से अपने को विरत रखकर राष्ट्र निर्माण के अपने गरिमामयी दायित्व का निर्वहन ठीक प्रकार से कर सके।

सन्दर्भ :–

1. आनन्द, एस0पी (1972), स्कूल टीचर्स एण्ड जॉब सैटिसफैक्शन, टीचर एजूकेशन अंक 7(1), पृष्ठ 13–17।
2. पूर्ववत् पृष्ठ 15।
3. पूर्ववत् पृष्ठ 18।
4. द्विवेदी, मारकन्डे (1981), ए कम्पेरेटिव स्टडी आफ जॉब सैटिसफैक्शन आफ प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स, एम0एड0 डिजरटेशन, बी0एच0यू0 पृष्ठ 15।
5. पूर्ववत् पृष्ठ 16।
6. शर्मा, आर0ए0 (2003), अध्यापक शिक्षा, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस मेरठ पृष्ठ–36।